R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-20, अङ्क-1 जनवरी 2020 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

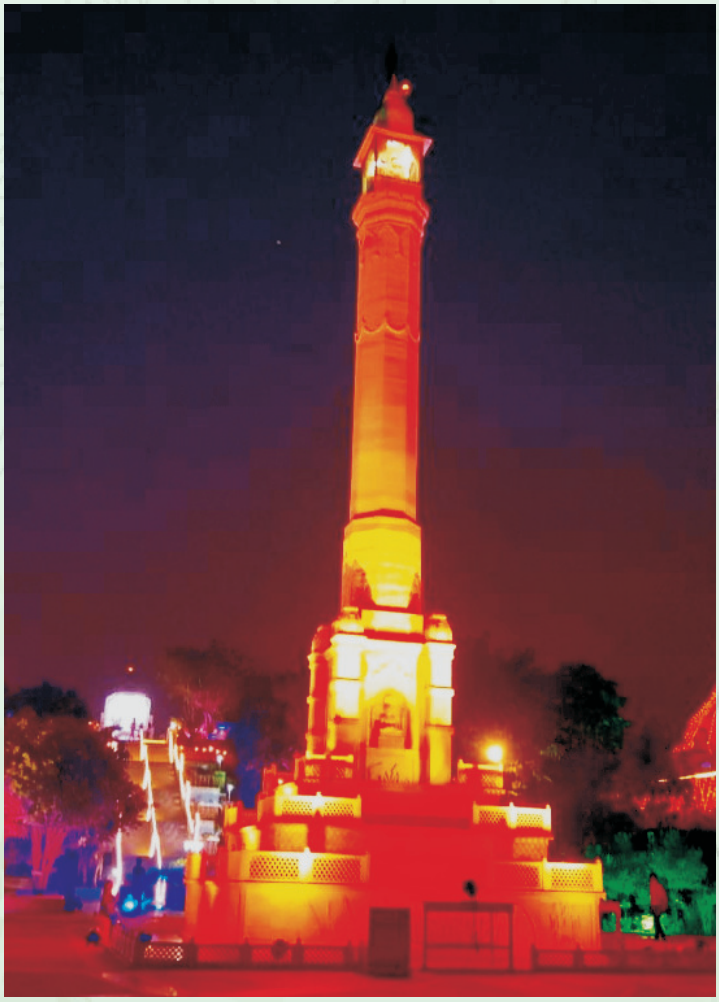

मंगल वात्सल्य प्रभावना शिविर की झलकियाँ

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-20, अङ्क-1 (वी.नि.सं. 2546; वि.सं. 2076) जनवरी 2020

ऋषभ पधारे भैय्या .....

ऋषभ पधारे भैय्या आज, बाजे रे बाजे शहनाई-2
म्हारा प्रभुजी अयोध्या वाला, मरुदेवी का प्यारा 2 लाल
गाओ - रे गाओ सब भाई ।टेक ॥

आदि प्रभु आदि तीर्थंकर, स्वर्गों से पधारे है आज
नाचो रे नाचो सब भाई ॥1 ॥

नाभिराय राजा के नंदन, वन्दन शत शत बार
जय-जय बोलो सब भाई ॥2 ॥

म्हारा प्रभुजी अन्तरदृष्टि, सर्वज्ञ अरु वीतराग
बजाओ भाई शहनाई ॥3 ॥

आदि प्रभुजी की मनहर मूरत, समवशरण आयो आज
जयकार करो सब भाई ॥4 ॥

देव-देवियां रत्न बरसावे, केशर की छोड़ो पिचकारी
आओ रे आओ सब भाई ॥5 ॥

धन्य हो गये ते परमाणु जिन, प्रभु की देह रचाई
नाचो रे नाचो सब भाई ॥6 ॥

देव दुदुंभी स्वर्गों में बाजे, हमने धरती पे धूम मचाई
जय-जय बोला सब भाई ॥7 ॥

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमती ओखीबाई
धर्मपत्नी
श्री जसराजजी बागरेचा
हस्ते
श्री अशोककुमार जैन बागरेचा
बैंगलोर - 560019

क्या - कहाँ

मैं अपने चैतन्यसुख का..... 5
जीव का वर्णन..... 8
भूतार्थस्वभाव के आश्रय..... 19
आचार्य परिचय शृंखला..... 23
प्रेरक-प्रसंग..... 26
समाचार-दर्शन..... 28

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

मैं अपने चैतन्यसुख का अनुभव करता हूँ

[नियमसार, कलश 199 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

(आश्विन शुक्ला-2)

अहा, इस चैतन्यसम्पत्ति के समक्ष जगत की किसी भी सम्पत्ति का मूल्य नहीं है। जिसने अन्तर की अनुभूति द्वारा ऐसी चैतन्यसम्पत्तिवाले आत्मा को प्राप्त किया है, वही सच्चा लक्ष्मीवान है; बाकी जो बाह्य के संयोग से बड़ाई लेना चाहते हैं, वे सब दरिद्र हैं। भगवान! तू निर्धन नहीं, दीन नहीं; तू तो चैतन्यसम्पत्ति से भरपूर भगवान है... सुख की सम्पत्ति तो तुझमें ही भरी हुई है। ज्ञान को अन्तर्मुख करके अपने स्वरूप की समाधि द्वारा उसका अनुभव कर... तेरा आनन्दमय आत्मवैभव तीन लोक में सर्वश्रेष्ठ है, वह तेरी ही समाधि का विषय है-अर्थात् तेरे अन्तर्मुख उपयोग में ही वह प्राप्त होता है; इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से उसकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिए अन्तर के उपयोग द्वारा सुख-सम्पत्ति से भरपूर अपने 'चैतन्यधाम' में आनन्द से निवास कर।

अनन्त चैतन्यशक्ति से भरपूर अपनी प्रभुता को भूलकर जीव संसार की चार गतियों में जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ शुभराग के फलरूप दुःख का ही अनुभव किया। अरेरे, आत्मा तो चैतन्यस्वरूप विशुद्ध सुखधाम है; उसको भूलकर मैंने अभी तक विषवृक्ष के फल की भाँति दुःख का ही अनुभव किया; परन्तु अब मैं उस भूल को छोड़ता हूँ और अपने शुद्ध चैतन्यसुख का अनुभव करता हूँ। मेरी अनुभूति में भव के दुःख का अभाव है। चैतन्यस्वभाव के अमृत को भूलकर चार गति का भाव, वह विषवृक्ष है, उसका फल दुःख ही दुःख है—चाहे स्वर्ग में हो, वहाँ भी जीव अज्ञानभाव से दुःखी है। परन्तु जहाँ चैतन्यशक्ति का अनुभव हुआ, स्वयं ने अपनी प्रभुता देखी, वहाँ अपने आत्मा में से ही अनुपम अतीन्द्रिय रागरहित

का महान सुख उत्पन्न हुआ, उस शुद्ध सुख का ही मैं अनुभव करता हूँ। देखो, यह धर्मात्मा का अनुभव!

भाई! तेरे सुख की उत्पत्ति तो आत्मा में से होगी कि बाह्य में से आयेगी? अरिहन्तों को जो केवलज्ञानादि अनन्त सुख से भरपूर लक्ष्मी प्रगट हुई है, वह कहाँ से आयी? राग तो उन्हें नहीं है, विषयों की ओर लक्ष्य नहीं है, अन्तर के चैतन्य के वेदन में से ही परम सुख आता है। ऐसे चैतन्य के वेदन से हटकर अन्य की ओर लक्ष्य जाने से जो वेदन होता है, वह तो विषफल की भाँति दुःख है; ऐसे समस्त पराश्रित भाव को दुःखरूप जानकर धर्मी छोड़ देता है तथा अन्तर्मुख अपने चैतन्यतत्त्व के वेदन द्वारा आत्मा के शुद्ध सुख का अनुभव करता है। ऐसे अनुभव का नाम समाधि है, उसमें शान्ति है; वह निजगृह में निवास है।

अरे जीव! तू अनन्त काल से शान्ति के लिये तरस रहा है तो अपनी प्यास बुझाने के लिये अन्तर्मुख होकर चैतन्यसरोवर के अतीन्द्रियरस का स्वाद ले। तेरे अन्तर में ही मीठे मधुर आनन्दरस का सरोवर भरा हुआ है, उसमें उतरकर आनन्दरस नहीं पीता और मृगजल की भाँति बाह्य के शुभ-अशुभ विषयों की ओर दौड़कर तू दुःखी हो रहा है। परन्तु तेरा आत्मा उस शुभ-अशुभ रागस्वरूप नहीं है, तेरा आत्मा तो सुख के चैतन्य से भरा हुआ है। अपनी रुचि को परभाव से हटाकर अपने चैतन्य में लगा। आनन्दरस का धाम तू स्वयं ही है। आनन्द-ज्ञान-शान्ति ऐसे अनन्त रस तुझमें भरे हैं। अन्तर में एक बार दृष्टि तो कर। इस शरीर के स्थान पर ही (परन्तु शरीर से बिल्कुल भिन्न) तू स्वयं अन्तर में चैतन्यरस से भरपूर है, राग से भी तेरा चैतन्यरस भिन्न है। इस प्रकार चैतन्यस्वरूप के सुख को तू अनुभव में ले।

बस, अब मैंने अपना पक्ष बदल दिया है; विभाव से विमुख होकर मैं अपने स्वभाव के सन्मुख हुआ हूँ। मेरा चैतन्यस्वभाव अतीन्द्रिय सुख की सुगन्ध से भरपूर है, परभाव की उसमें गन्ध भी नहीं है। अनादि से परभाव का पक्ष करके दुःखी हुआ था, अब परभाव का पक्ष छोड़कर, अपने

चैतन्यस्वभाव के पक्ष में मैं अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता हूँ। आत्मा के अनुभव में तो आनन्द का झरना झरता है।

आत्मा में से क्या निकलता है?—आत्मा में से तो चैतन्यसुख निकलता है। ध्रुवस्वभाव में परिणति एकाग्र होने से वह पर्याय अतीन्द्रिय आनन्दरूप हो गयी है। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द नहीं आता, वह ज्ञान नहीं है। अन्तर्मुख ज्ञान में आत्मा के अनन्त रस भरे हैं, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का समावेश है, उसमें परम आनन्द है। ऐसे आनन्द के वेदनसहित आत्मा का ज्ञान प्रगट होता है। आनन्दरहित ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान नहीं है।

भाई, तुझे सुखी होना है ना? सुख की उत्पत्ति तो तेरे आत्मा से होती है, इसलिए उपयोग को आत्मा में एकाग्र कर। चैतन्यसरोवर परम आनन्द से भरपूर है; सिद्धभगवन्तों ने जो आनन्द प्रगट किया है, वह आनन्द इस चैतन्यसरोवर में भरा हुआ है; उस चैतन्यसरोवर को छोड़कर बाह्य में दौड़ेगा तो तुझे कहीं सच्ची शान्ति का जल नहीं मिलेगा। सच्ची शान्ति के लिये अन्तर में अपने चैतन्यसरोवर में डुबकी लगा।

चैतन्यसुख का अनुभव करते ही ज्ञानी को ऐसा लगता है कि अहो! मेरा ऐसा अचिन्त्य परम आनन्द मुझमें ही होने पर अभी तक अपने सुख को भूलकर मैं दु:खी हुआ था। अहो! अब तो चैतन्यभगवान निजात्मगुणों के वैभव सहित अपने अन्तर में स्फुरायमान हुआ है—सम्यग्दर्शन की अपनी अनुभूति में आत्मसम्पत्ति ही प्रगट हुई है; मेरी सम्पत्ति मैंने अपने में देखी है; उसके परम आनन्द का अनुभव करता हुआ मैं अब विभाव के विषफल का उपयोग नहीं करता, उसको अपने से भिन्न जानता हूँ।

अहो, ऐसी चैतन्यसम्पत्ति! वह धर्मात्मा की अनुभूति का ही विषय है; राग का यह विषय नहीं; राग से पार ऐसी जो निर्विकल्प समाधि, उसमें अपनी चैतन्यसम्पत्ति को ध्येय बनाने पर सम्यग्दर्शन तथा परम आनन्द प्रगट होता है। पूर्व काल में एक समय भी ऐसी चैतन्यसम्पत्ति को मैंने नहीं

....शेष पृष्ठ 25 पर

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी के

जीव का वर्णन

गतांक से आगे

नव पदार्थों का ज्ञान अनुभव के लिये कारण है, अत: उनका विवेचन किया जाता है:-

जीव का वर्णन

समता-रमता उरधता, ग्यायकता सुखभास।
वेदकता चैतन्यता, ए सब जीवविलास॥26॥

अर्थ:- वीतराग भाव में लीन होना, ऊर्ध्वगमन, ज्ञायकस्वभाव, साहजिक सुख का सम्भोग, सुख-दु:ख का स्वाद और चैतन्यता- ये सब जीव के निजगुण हैं।

काव्य- 26 पर प्रवचन

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष तथा पुण्य और पाप- ये नव तत्त्व हैं। जीव पदार्थ का वर्णन पूर्व में आ गया है। यहाँ जीवतत्त्व का वर्णन करते हैं।

यह भगवान आत्मा का विलास बतलाते हैं। राग-द्वेष रहित वीतरागभाव, वह समता है। रागभाव में लीन होना, वह जीव का स्वभाव नहीं है, वीतरागभाव में लीन होना, वह स्वभाव है।

श्रीमद् राजचन्द्र ने स्वयं इस पद का अर्थ किया है। श्रीमद् राजचन्द्र पुस्तक में 436वाँ पद्य है। 26वें वर्ष में लिखा है, वह अपनी चर्चा में लेते हैं-

श्री तीर्थंकर भगवान ने इस जगत में जीव नामक पदार्थ को जिस प्रकार कहा है, वह अत्यन्त यथास्थित कहा है। उसे हमने निराबाधपने जाना है, हमने ऐसे आत्मा को स्पष्ट अनुभवा है, प्रकट वह ही आत्मा, हम हैं।

वह आत्मा 'समता' लक्षण से युक्त है, असंख्यप्रदेशी है, वर्तमान में जैसी चैतन्य की स्थिति है, वैसी ही भूतकाल में थी। अनन्त काल से ऐसा है और भविष्य में भी ऐसा ही रहेगा। असंख्य प्रदेशों में से कभी घट-बढ़ नहीं होती। अरूपी है, उसमें से कभी रूपी नहीं होता। त्रिकाल आनन्दकन्द

स्वभावी है, वह ऐसा का ऐसा ही रहता है।

जैसे–लोटे से पानी भिन्न है, वैसे यह देह काशीघाट के लोटे जैसा है। इससे भगवान आत्मा त्रिकाल भिन्न है। लोटे का आकार लोटे के कारण और पानी का आकार पानी के कारण और आत्मा का आकार आत्मा के कारण है।

चैतन्यपना, अरूपीपना, असंख्यप्रदेशीपना आदि जो जीव का स्वभाव है, वह कभी नहीं छूटता। ऐसी जो समझ, उसका नाम समता है; वह जीव का लक्षण है। ये सब चैतन्य आदि स्वभाव भूत वर्त्तमान, भविष्य तीनों कालों में ऐसे के ऐसे रहते हैं, तीनों काल एकरूप रहते है। सम+ता=समपना–ऐसा कहना है। बनारसीदासजी का भी यही कहना है। समता शब्द में क्षेत्र से, काल से, गुण से समानपना बतलाया।

श्रीमद् राजचन्द्रजी का क्षयोपशम बहुत था। उस समय क्षयोपशम में वे एक ही पुरुष थे, पर गृहस्थअवस्था में रहते थे; इसलिए कीमत नहीं हुई। लोगों को बाह्यत्याग की महिमा है, परन्तु तत्त्व के भान बिना बाबा होकर बैठ जाये, उसकी क्या कीमत है ?

जीव का असंख्य प्रदेशी क्षेत्र अनादि–अनन्त है, चैतन्यपने का भाव अनादि–अनन्त है, अरूपीपना अनादि–अनन्त है। इस प्रकार चैतन्यद्रव्य अनादि–अनन्त अर्थात् तीनों काल ऐसे लक्षण से सहित है।

आत्मसिद्धि में श्रीमद् ने आत्मा का स्वरूप लिखा है न !

शुद्ध–बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम।
बीजु कहिए केटलु, कर विचार तो पाम॥

भगवान आत्मा शुद्ध–बुद्ध ज्ञान का सागर, ज्ञान के स्वभाववाला तत्त्व है। चैतन्यघन है, स्वयं प्रकाशी है। उसे प्रकाशने के लिए अन्य की आवश्यकता नहीं है। सुखधाम–आनन्द का धाम है। आत्मा स्वयं अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है। अन्य–में स्त्री, धनादिक में उसका सुख नहीं है।

समता का सीधा अर्थ तो वीतरागभाव में रहना, वह है, वह तो अमुक काल में ही होता है; परन्तु श्रीमद् ने तो बनारसीदासजी के काव्य में से समता

को त्रिकाल लक्षण गिनकर अर्थ निकाला है। जिसमें त्रिकाल चैतन्यपना आदि गुण है, वह आत्मा है। यह समता का अर्थ है। समता अर्थात् वीतराग भाव में रमना। समयसार नाटक में समता-रमता का एक ही अर्थ लिया है और यहाँ दोनों के भिन्न अर्थ किये हैं। श्रीमद् ने बहुत सरस अर्थ किया है।

'रमता' अर्थात् रमणपना, क्या रमणपना? कि पशु-पक्षी, मनुष्य, वृक्षादि देह में जो रमणीयपना ज्ञात होता हैं- शरीर के अन्दर जो रमणीय आत्मा ज्ञात होता है, स्फूर्ति दिखती है, जो सुन्दरपने से सहित है, ऐसा रमणपना, वह आत्मा का लक्षण है। आत्मा की ऐसी रमणीयता न हो तो सम्पूर्ण जगत शून्यवत् सम्भावित है।

प्रकाश के प्रकाशक- ऐसे भगवान आत्मा की हयाती-अस्तित्व बिना सम्पूर्ण जगत शून्यवत् भासता है- ऐसी आत्मा की रमणीयता है।

श्रीमद् के अन्दर के क्षयोपशम की बहुत गम्भीरता थी.. शब्द के अन्दर के भाव भी कैसे निकाले हैं! परन्तु लोगों ने उन्हें बाहर से ही कल्प लिया है, उनकी बाहर की भक्ति करके मुक्ति होगी- ऐसा मानते हैं। भक्ति तो शुभभाव है, उससे मुक्ति किस प्रकार होगी ?गुरु के सामने देखने से मुक्ति नहीं होती। उन्होंने तो यह कहा है कि तू अपने समक्ष देख! स्वद्रव्य की रक्षा कर! राग-पुण्य वह तेरी वस्तु नहीं। स्वद्रव्य की रक्षा कर, स्वद्रव्य का धारक हो!

स्वद्रव्य में व्यापक बन! पुण्य-पाप में मत व्याप! वे तो जड़ हैं, उसमें अपना विस्तार करने मत जा! स्वद्रव्य को धार! ऐसा कहा है। ऐसा कहीं नहीं कहा कि हमारी भक्ति कर तो तेरी रक्षा होगी। हमको धार! ऐसा भी नहीं कहा। उसमें (स्वद्रव्य परद्रव्य सम्बन्धी दश बोलों में) अन्तिम में कहा है कि परद्रव्य का रक्षकपना शीघ्र त्याग दे! परद्रव्य रागादि मेरे हैं, ऐसा धार -मान रखा है, वह छोड़ दे।

ऐसे लक्षणों से जो युक्त है, वह आत्मा है। उसी के कारण सब रम्य लगता है, उसके बिना तो सब शून्यवत् लगता है। ऐसा रम्यपना जिसमें है, वह आत्मा है। आत्मा है तो शरीर ऐसा दिखता है। आत्मा चला जाता है तो शरीर ढल (विकृत) जाता है। भले ही आत्मा है, परन्तु शरीर की स्थिति तो

तब भी शरीर के कारण से है, आत्मा के कारण नहीं। आत्मा हो और शरीर सड़ता है –ऐसा भी बनता है, शरीर में जीवाणु भी पड़ते हैं, वह तो शरीर का स्वभाव है। हम एक जगह गये थे, वहाँ एक बाई का शरीर ऐसा सड़ गया था कि मरे हुए गधे के समान दुर्गन्धयुक्तसा हो गया था। एक जगह एक युवा के माता (चेचक) निकली थी तो दाने-दाने में जीवाणु पड़ी थी। आत्मा तो अन्दर है तथापि शरीर सड़ जाता है- यह शरीर का स्वभाव है।

यहाँ तो यह बताना था कि आत्मा हो, वहाँ तक शरीर उसकी अपनी योग्यता से तेजवाला (कान्तियुक्त) रहता है। अन्तर में तेजी और स्फूर्ति है, वह आत्मा की है। ऐसी आत्मा की रमणीयता है।

'उरधता' का अर्थ यहाँ उर्ध्वगमन किया है, परन्तु वह तो कभी ही होता है; परन्तु यहाँ श्रीमद् ने अच्छा अर्थ किया है कि जो आत्मा का कायमी स्वभाव है। 'उर्ध्वपना' यह आत्मा का स्वभाव है। कोई भी जाननहार कभी भी किसी भी पदार्थ को अपने अविद्यमानपने जाने- ऐसा नहीं बनता। चैतन्य की अविद्यमानता में कोई पदार्थ ज्ञात नहीं होता। अत: किसी भी पदार्थ के जानने में प्रथम अपनी विद्यमानता घटित होती है।

यह शरीर है, यह वाणी है- यह सब आत्मा की हयाती बिना किसमें ज्ञात हो ? अत: प्रत्येक पदार्थ को जानने से पूर्व जिसकी मुख्यता है- ऐसा जीव का उर्ध्वस्वभाव है। राग हो, द्वेष हो, शरीर में फेरफार हो, वह जाननहार बिना किसमें ज्ञात हो ? ज्ञात ही नहीं हो, अत: सबमें जाननेवाले की ही मुख्यता है। किसी भी पदार्थ के ग्रहण-त्याग को ज्ञान जानता है। किसी का उदासीन ज्ञान होने में भी कारण स्वयं ही है।

इस प्रकार कोई भी पदार्थ के अल्प भी जानने में, अंगीकार करने में, त्याग करने में प्रथम जो रहता है, वह आत्मा है। ज्ञान बिना किसी पदार्थ का जानना नहीं हो सकता। इस पदार्थ को मैं अंगीकार करता हूँ- अथवा इस पदार्थ का त्याग करता हूँ -ऐसा जाननेवाले के बिना कौन जाने ?

इस प्रकार सबसे प्रथम रहनेवाला उर्ध्व वह जीवपदार्थ है। उसे गौण करके अर्थात् कि उसके बिना कोई कुछ भी जानना चाहे तो वह बनने योग्य

नहीं है। मात्र वही मुख्य हो तो ही अन्य कुछ जाना जा सकता है- ऐसा यह प्रकट उर्ध्वता धर्म जिसके अन्दर है उस पदार्थ को श्री तीर्थंकर जीव कहते हैं।

यहाँ नाटक समयसार में यह 26 वाँ श्लोक चल रहा है, जिसका अर्थ अपन श्रीमद् राजचन्द्र पुस्तक में से ले रहे हैं। श्रीमद्जी ने समता-रमता आदि का अर्थ विशेष प्रकार से किया है, वह अर्थ गम्भीर है।

शास्त्र में समता का अर्थ वीतरागता और रमता का अर्थ उसमें रमण करना- ऐसा लिया है। परन्तु यहाँ श्रीमद् ने समता अर्थात् समपना ऐसा अर्थ लिया है। आत्मा भूत-भविष्य और वर्तमान काल- तीनों कालो में असंख्य प्रदेशी, चैतन्यस्वरूप, अरूपी आदि गुणों से समपने रहा है अर्थात् कि वे स्वभाव कभी नहीं छूटते ऐसा समपना वह आत्मा का लक्षण है। सम+ता अर्थात् समपना, रम+ता अर्थात् रम्यपना-ऐसे जो अर्थ श्रीमद् ने किये हैं वे यथार्थ घटित होते हैं।

आत्मा का स्वभाव रम्य है। आत्मा में त्रिकाल रम्यपना रहा है। उरधता अर्थात् उर्ध्वपना- यह अर्थ बराबर बैठता है। उर्ध्वगमन स्वभाव यह अर्थ नहीं बैठता; क्योंकि उर्ध्वगमन तो एक समय मात्र है, जबकि उर्ध्वता स्वभाव तो त्रिकाल है। उर्ध्वपना यह भाव वाचक शब्द है तो उसमें उर्ध्वपना किस प्रकार है, वह यहाँ बताना है।

कोई भी जाननेवाला कभी भी किसी भी पदार्थ को अपनी अविद्यमानता में जाने- यह बनने योग्य नहीं है। प्रथम अपना विद्यमानपना घटित होता है अर्थात् कि किसी भी पदार्थ को जानने के काल में अपना अस्तित्व होना घटित होता है कि जो मुख्य है। जाननेवाले का उर्ध्वपना प्रत्येक काल में है। ज्ञान की विद्यमानता बिना कुछ भी ज्ञात नहीं होता।

किसी भी वस्तु का संयोग हो या वियोग हो, उसका ज्ञान करनेवाला स्वयं है अथवा किसी वस्तु का उदासीन ज्ञान हो। उसमें भी कारण स्वयं है। राग का होना या जाना, शरीर का संयोग होना या वियोग होना और किसी भी वस्तु का उदासीन ज्ञान होना, उन तीनों को ज्ञान की विद्यमानता में जानता है,

ज्ञान विद्यमान न हो तो उन सबको जाने कौन ? अत: यह ज्ञान का उर्ध्वपना है।

प्रत्येक पदार्थ के अल्प जानपने में भी ज्ञान में जाननेवाला ही मुख्य है। जो सबमें प्रथम रहनेवाला है। अत: वह उर्ध्व अर्थात् मुख्य है, यह अर्थ ही यहाँ लागू पड़ता है। इस अर्थ से ही भाव भासता है। किसी भी शब्द का भाव तो भासना चाहिए न, कि इस शब्द द्वारा वस्तु का यह भाव बताते हैं।

भगवान चैतन्यमूर्ति की हयाती-अस्तित्व के बिना कोई कुछ भी जानना चाहे तो यह बनने योग्य नहीं है। जाननेवाले के बिना किसी का ग्रहणत्याग हो, उसे कौन जाने ? राग आवे या जावे उसे राग तो जानता नहीं, तो राग को जाना किसने ? कि जाननेवाला ही सर्व को जानता है। दया, दान, भक्ति आदि का राग आया और आकर चला गया। उसको आत्मा की अविद्यमानता में जाने कौन ? जाननेवाले की अविद्यमानता में कुछ ज्ञात ही नहीं होता। अत: जाननेवाला ही मुख्य हो तो ही अन्य सब जाना जा सके ऐसा यह प्रकट 'उर्ध्वता धर्म' जिसमें हैं, उसको भगवान जीव कहते हैं।

इस श्लोक का ऐसा अर्थ श्रीमद् ने अपनी ही विचक्षणता से निकाला है। बहुत सरस अर्थ किया है। उस समय हिन्दुस्तान में दूसरा ऐसा कोई पुरुष नहीं था -ऐसा लगता है। बहुत क्षयोपशम ! शब्द बनारसीदासजी के हैं, परन्तु श्रीमद् ने अर्थ कैसा निकाला है !

यह जीवद्रव्य के लक्षण की बात चलती है। उसमें श्रीमद् ने एक-एक शब्द का पेट (गहरा आशय) खोला है। अहो ! भगवान आत्मा की मुख्यता बिना यह राग आया-गया, शरीर आया-गया, रोग हुआ और गया उसे जाना किसने ? जाननेवाला हो तो ही जाने। अत: रागादि होते हैं, उनकी मुख्यता नहीं; परन्तु जाननेवाले की मुख्यता है। आत्मा उसका जाननेवाला है, करनेवाला नहीं।

मात्र जाननेवाला ही मुख्य हो तो ही अन्य कुछ जाना जा सकता है। जाननेवाला मुख्य न हो और अन्य कुछ जाना जा सके ऐसा नहीं बनता; क्योंकि जाननेवाले बिना उन्हें जाने कौन ? अत: प्रज्ञाब्रह्म चैतन्य ही सर्वकालों में मुख्य है। राग, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि क्रिया उससे भिन्न है; क्योंकि वे तो विकल्प हैं, वे कुछ नहीं जानते।

जाननेवाला स्वयं मुख्य न हो तो अन्य को जाने कौन ? अन्य प्रसंगों को जाने कौन ? प्रत्येक समय जाननेवाला हो तो ही उनका ज्ञान होता है। ऐसा जीव का उर्ध्वता धर्म है।

देखो ! यह दृष्टि के विषय की बात नहीं है, दृष्टि का विषय तो अभेद है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है ऐसा ज्ञान करके उसमें दृष्टि करे, तब अभेद दृष्टि हो। वस्तु स्वयं एक तत्व है न। अस्तित्ववाली चीज है न ! वह द्रव्य है, असंख्य प्रदेश उसका क्षेत्र है, ज्ञान-दर्शनादि उसके भाव हैं और वह त्रिकाल ऐसा का ऐसा रहा है; वह उसका काल है। इसको जीव का समपना गिनने में आया है।

'रम्यपना' यह भी आत्मा का लक्षण कहा है। जिसके विद्यमानपने बिना सम्पूर्ण जगत शून्यवत भासता है। अरे ! शून्य को भी जाननेवाले बिना कौन जाने ?

जिसकी मुख्यता में ही अन्य ज्ञात होता है, उसकी मुख्यता बिना ज्ञात नहीं होता। यह आत्मा का उर्ध्वपने का स्वभाव कहा है। यह राग है, यह पुण्य है, यह शरीर है, उसमें रोग आता है, जाता है, शुभभाव आते हैं, जाते हैं इन सबका जाननेवाला कौन ? जाननेवाला (आत्मा) ही इन सबको जानता है। अत: कहा कि जाननेवाले की ही मुख्यता में अन्य सब ज्ञात होता है। ऐसा उर्ध्वपना जिसमें है, उस पदार्थ को श्री तीर्थंकर जीव कहते हैं।

अब, चौथा लक्षण 'ज्ञायकता'। प्रकट ऐसे जड़ पदार्थ और जीव, वे जिस कारण से भिन्न पड़ते हैं, वह लक्षण जीव का 'ज्ञायकता' नामक गुण है। प्रकट ऐसे जड़ पदार्थों में रागादि परिणाम भी आ जाते हैं; क्योंकि वे भी जड़ ही हैं। उनसे 'ज्ञायकता' लक्षण से जीव भिन्न पड़ता है। यह लक्षण जीव में त्रिकाल रहा है- इस कारण ज्ञायकपनें से रहित जीव को, किसी समय अनुभव नहीं सकते, ज्ञायकपने ही उसका अनुभव हो सकता है। तथा यह 'ज्ञायकपना' जीव के अतिरिक्त अन्य द्रव्यों में नहीं, पुण्य-पाप के विकल्पों, व्यवहार रत्नत्रय आदि में भी ज्ञायकपना सम्भव नहीं; क्योंकि वे भी अचेतन लक्षणवाले हैं। त्रिकाल अनुभव का कारण यह ज्ञायकभाव ही है। आत्मा के आनन्द के वेदन के कारणरूप यह ज्ञायकभाव ही है।

यह तो वस्तु के मूलस्वरूप की बात है! अपूर्व बात है! जगत बाहर में ही अटक जाता है। इससे सिर फोड़कर मर जाता है तो भी वस्तु का अनुभव नहीं होता। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अन्दर में ज्ञायकरूप से ही विराज रहा है। अन्य किसी में वह ज्ञायकपना नहीं, ऐसा जो 'ज्ञायकपना' ऐसे लक्षणवाले को श्री तीर्थंकर परमात्मा ने जीव कहा है। देखो, पुण्य -पापवाला जीव- ऐसा नहीं कहा।

साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा के समीप जा आया, उनके दर्शन किये, वाणी सुनी; परन्तु आत्मा का अनुभव नहीं हुआ; क्योंकि यह सब तो परलक्ष्यी वृत्ति का उत्थान है। भगवान द्वारा कथित 'ज्ञायकता' लक्षणवाले जीव का लक्ष्य करे तो अनुभव हो।

अब पाँचवाँ लक्षण 'सुखभास' कहा है। सुख का भास होना, वह आत्मा में है। शब्द, रस, रूप आदि पाँच इन्द्रियों के विषयों सम्बन्धी और समाधि आदि योग सम्बन्धी जिस स्थिति में सुख सम्भव है, उन्हें भिन्न-भिन्न करके देखने पर अन्त में उन सबमें सुख का कारण एक ही ऐसा यह जीव पदार्थ सम्भव है। पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुख तो नहीं परन्तु जीव कल्पना करता है न! उसी प्रकार शुभाशुभभाव में भी सुख की कल्पना करता है। उनमें सुख नहीं, परन्तु सुख का भास तो होता है, वह भी आत्मा में है। अज्ञानी बाहर के पदार्थों में लक्ष्य करके सुख मानता है, परन्तु वह तो दु:ख है। उसमें आत्मा का सुख नहीं है। सुख का वास्तविक कारण तो आत्मा है। उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का रस पड़ा है। वह आनन्द इन्द्रियातीत है, विकल्पातीत है, वचनातीत है, अर्थात् वह आनन्द इन्द्रिय, वाणी, मन, शरीर, विकल्प आदि से भिन्न है।

अज्ञानी जीव ने कभी इस तत्त्व का ज्ञान ही नहीं किया। तत्त्व के ज्ञान बिना व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि कर-करके मर गया, तपस्या करके हैरान होकर मर गया; परन्तु जो करने योग्य था, वह कभी नहीं किया।

सुख का भास होना अर्थात् सुख का मालूम पड़ना, वह भी आत्मा में होता है। बाहर की क्रिया में, या दया-दान-विकल्प में सुख मालूम नहीं

पड़ता। जीव के सिवाय कहीं सुख है ही नहीं।

देखो, बनारसीदासजी के इस एक श्लोक में इतना स्वरूप भरा है। पहले तो वे शृंगारी कवि थे, फिर अवस्था बदल गई; जैन के अव्वल कवि हो गये। जो शृंगाररस की कवितायें लिखी थीं, वे सब नदी में फैक दी। अरे! मैंने ऐसा पाप किया। फिर तो दृष्टि गुलाट खाकर अन्दर में उतरी और सत्-समागम से (वस्तुतत्त्व का) भान हुआ। ऐसा परिवर्तन हो सकता है, न हो- ऐसा नहीं है। सौ चूहे मारकर बिल्ली हज को चली। (यह कहावत लोकप्रचलित है) तात्पर्य यह है कि पाप करनेवाला सुधर नहीं सके- ऐसा नहीं होता।

मैंने आत्मा को भूलकर अपराध किया है। वह मेरा गुनाह है। अरे! यह मैं नहीं, मैं तो सच्चिदानन्द आनन्दमूर्ति हूँ। गुनाह करना, वह मेरा स्वरूप नहीं।

यहाँ श्रीमद् ने सुखभास लक्षण के लिए व्यवहार से निद्रा का दृष्टान्त दिया है। जिस निद्रा में अन्य कोई पदार्थ तो नहीं, वहाँ भी मैं सुखी हूँ- ऐसा जो ज्ञान है, वह बाकी बचे हुए जीव पदार्थ का ही है। आत्मसिद्धि में आता है न- 'अबाध्य अनुभव जे रहे ते जीवस्वरूप' घटाने पर जो बचे वह आत्मा है। राग, शरीर, मन, वाणी, पुण्य, पाप के विकल्प आदि सबको बाद (घटाते) करते-करते बाकी जो बचा, वह आत्मा है। उसको घटाया नहीं जा सकता। आत्मा को घटाये तो शून्य रहे।

निद्रा में अन्य कोई पदार्थ तो विद्यमान नहीं और सुख का भासित होना तो अत्यन्त स्पष्ट है। वह जिससे भासित होता है, वह जीव नामक पदार्थ के सिवाय अन्य कहीं वह लक्षण देखा नहीं। सुख..सुख..सुख आत्मपदार्थ के सिवाय अन्य कहीं नहीं है।

सुख के लिए श्रीमद्जी ने निद्रा का दृष्टान्त लिया है। अपन एक सेठ का दृष्टान्त लेते हैं कि एक करोड़पति सेठ था। उसके एक ही पुत्र था। सेठ ने पुत्र से कहा कि अपने पास पर्याप्त धन है; अतः कुछ धन्धा नहीं करना। तथापि पुत्र ने व्यापार किया और दस लाख का नुकसान हुआ। अब! सेठ तो

सत्ताप्रिय मनुष्य था, उसके पास पुत्र पैसे लेने नहीं जा सका। अपने भाईबन्धुओं के माध्यम से पिता से कहलवाया कि या तो पैसे दो, अन्यथा सवेरे मेरा मुँह देखने को नहीं मिलेगा। मित्र ने सेठ से जाकर कहा तो सेठ क्रोधित हो गया। तब मित्र कहता है कि बापूजी! एक बात कहूँ?सुनो, तुम्हारी उम्र अस्सी वर्ष की तो हो गई है। अब पाँच-दस वर्ष में आप चले जाओगे, तब ये सारी सम्पत्ति तो आपके पुत्र की ही होगी न! विचार करके देखो तो ये पैसे तो उसी के गये, तुम्हारे कहाँ थे ?तब सेठ ने उससे कहा कि बेटा! तुमने तो बहुत बड़ी बात की है, सच्ची बात है, यह ले! पैसे ले जा। इसमें मेरा कुछ भी कम नहीं हुआ।

देखो! सेठ पहले अकुलाकर दु:खी हुआ और फिर समाधान से सुख को प्राप्त हुआ। प्रतिकूलता तो वह की वही थी; परन्तु जहाँ सेठ की दृष्टि फिर गई, वहाँ सन्तोष हो गया। इतनी प्रतिकूलता में जिसे समाधान करना आता है, उसको अनन्त प्रतिकूलता में भी समाधान करना आता है, ऐसा यह आत्मा सन्तोषी है, सुखस्वरूप है।

भगवान आत्मा सुखस्वरूप है। चाहे जैसी प्रतिकूलता हो, परन्तु वह समाधान..समाधान स्वरूप है। और जिसको एक प्रतिकूलता में समाधान करना आता है, उसे सभी प्रतिकूलताओं में समाधान करना आता है। भले ही कितनी भी प्रतिकूलता आवे, परन्तु वे मुझमें नहीं, मैं तो ज्ञान हूँ। इस प्रकार जिसको अपनी दृष्टि करके समाधान और सन्तोष करना आता है, उसको ही सुख और शान्ति है; अन्यथा कहीं शान्ति नहीं है। भगवान आत्मा के सिवाय कहीं भी सुख और शान्ति नहीं है।

अब 'वेदकता' लक्षण बताते हैं-यह मीठा है, यह खट्टा है, यह फीका है, यह खारा है ऐसा ज्ञान अथवा मैं इस स्थिति में हूँ, मैं ठिठुरता हूँ, मुझे ताप लगता है, दु:खी हूँ, दु:ख अनुभवता हूँ ऐसा जो स्पष्ट ज्ञान, वेदनज्ञान, अनुभवज्ञान, अनुभवपना, वह जिस किसी में भी हो तो वह इस जीवपद में ही है। यह जीव का 'वेदकता' लक्षण है।

खट्टा, खारा, ठण्डा, गर्म आदि को वेदनेवाला जीव है। उस वेदन स्वभाव से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा है। जड़पदार्थ किसी को वेद नहीं सकता; अत: ऐसा वेदकपना जिसमें है, वह जीव है ऐसा श्री तीर्थंकरदेव कहते हैं।

'चैतन्यता' भी आत्मा का लक्षण है। भगवान ज्ञान के प्रकाश बिना सूर्य चन्द्र, या दीपक के प्रकाश को कौन जाने? अत: स्पष्ट प्रकाशपना अनन्त -अनन्त कोटि दीपक, मणि, चन्द्र, सूर्यादि की कान्ति जिसके प्रकाश बिना प्रतिभासित नहीं होती अर्थात् वे सब स्वयं अपने को जानने या जनाने योग्य नहीं, उन्हें जो जाननेवाला है, वह जीव है। सूर्यादि की कान्ति जिसके प्रकाश बिना प्रकटने में समर्थ नहीं अर्थात् कि यह दीपक है, यह मणि है, यह सूर्य है, उसका प्रकाश है उसे जाननेवाले के सिवाय कौन जाने? प्रकाश के अस्तित्त्ववाले पदार्थ को भी जिसके प्रकाश में जानना होता है, वह चैतन्य चिह्न जीव का लक्षण है।

अरे! इसने ऐसे आत्मा को सुना नहीं और कुछ पैसा हो जाये तो मानो 'मैं चौड़ा बाजार सकरा' हो जाता है। परन्तु देखो, यहाँ कहीं ऐसा आया है कि पैसा जीव का लक्षण है? जब राग भी जीव का लक्षण नहीं है तो पैसा तो कहीं दूर ही रह गया।

आत्मा तो चैतन्य प्रकाश का नूर है कि जिसके प्रकाश के बिना चन्द्र-सूर्य की कान्ति भी प्रकाशित होना सम्भव नहीं है। अर्थात् जाननेवाले के बिना ज्ञात नहीं होती। जिस पदार्थ के प्रकाश में -चैतन्यता से वे पदार्थ जाने जाते हैं, वे पदार्थ प्रकाश पाते हैं, स्पष्ट भासते हैं। वह पदार्थ जो कोई है, वह जीव है। अर्थात् वह लक्षण प्रकटपने स्पष्ट प्रकाशमान, अचल ऐसा निराबाध प्रकाशमान चैतन्य, वह जीव का लक्षण, जीव के प्रति उपयोग लगाने से प्रकट दिखाई देता है।

यह जो लक्षण कहे, उन्हें पुन: पुन: विचारकर, जीव निराबाधरूप से जाना जाता है। इस प्रकार श्री तीर्थंकर देव ने जीव के लक्षण कहे हैं।

क्रमश:

आत्मार्थी का पहला कर्तव्य—5

भूतार्थस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन

देखो ! यह आत्मकल्याण की अपूर्व बात है । 'यह बात किसी दूसरे के लिए नहीं है, किन्तु मेरे लिए ही हैं' – इस प्रकार यथार्थ पात्र होकर स्वयं अपने ऊपर न ले तो उस जीव को समझने की दरकार नहीं है और न उसे आत्मा की यह बात अन्तर में जमेगी । इसलिए आत्मार्थी जीवों को अन्तर में अपने आत्मा के साथ इस बात का मिलान करना चाहिए ।

अहो ! इस सूत्र में भगवान कहते हैं कि – 'भूदत्थेणाभिगदा.... ' नव तत्त्वों को भूतार्थ से जानना सो सम्यग्दर्शन है । वास्तव में भूतार्थनय के विषय में नव तत्त्व हैं ही नहीं, नव तत्त्व तो अभूतार्थनय का विषय है । भूतार्थनय का विषय तो मात्र ज्ञायक आत्मा ही है । जो एक शुद्ध ज्ञायक की ओर ढला, उसे नव तत्त्वों का ज्ञान यथार्थ हो गया । एक चैतन्य तत्त्व को भूतार्थ जानने से सम्यग्दर्शन होता है । यह सम्यग्दर्शन का नियम कहा । नव तत्त्वों के विकल्प, वह नियम से सम्यग्दर्शन नहीं हैं ।

अब, जो नव तत्त्व कहे, उनमें पर्यायरूप सात तत्त्वों रूप एक जीव और दूसरा अजीव – इन दोनों का स्वतन्त्र परिणमन बतलाते हैं । जीव और अजीव तो त्रिकाली तत्त्व हैं, उसकी अवस्था में जीव की योग्यता और अजीव का निमित्तपना – ऐसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से पुण्य-पापादि सात तत्त्व होते हैं । वहाँ, विकारी होने योग्य और विकार करनेवाला – यह दोनों पुण्य हैं और दोनों पाप हैं, उनमें एक जीव है और दूसरा अजीव है अर्थात् विकारी होने योग्य जीव है और विकार करनेवाला अजीव है । जीव के विकार में अजीव निमित्त है, इसलिए यहाँ अजीव को विकार करनेवाला कहा है – ऐसा समझना । जीव स्वयं विकारी होने योग्य है, कोई दूसरा उसे विकार कराता है, ऐसा नहीं है । जीव सर्वथा कूटस्थ या सर्वथा शुद्ध नहीं है, किन्तु पुण्य-पापरूप विकारी होने की योग्यता उसकी अवस्था में है और योग्यता में अजीव निमित्त है । अजीव को विकार करनेवाला कहा, इसका

अर्थ ऐसा समझना कि वह निमित्त है। जीव की योग्यता है और अजीव निमित्त है। जीव में अपनी योग्यता से ही निमित्त होता है, उस समय निमित्तरूप से अजीव को विकार करनेवाला कहा जाता है, किन्तु यदि जीव में विकार की योग्यता न हो तो अजीव कहीं उसे विकार नहीं कराता।

जीव की योग्यता से विकार होता है, वह जीव पुण्य-पाप है, और उसमें अजीव निमित्त है, वह अजीव पुण्य-पाप है; इस प्रकार जीव और अजीव दोनों का स्वतन्त्र परिणमन है। इस प्रकार सातों तत्त्वों में एक जीव और दूसरा अजीव - ऐसे दो-दो प्रकार लेंगे। जीव और अजीव - यह दो तो स्वतन्त्र त्रिकाली तत्त्व हैं और इन दोनों की अवस्था में सात तत्त्वरूप परिणमन किस प्रकार है, वह बतलाते हैं। यह सब तो नव तत्त्व की व्यवहारश्रद्धा में आता है। पुण्य और पाप जीव का त्रिकालीस्वभाव नहीं है किन्तु अवस्था की योग्यता है और उसमें अजीव निमित्त है। जीव में पुण्य-पाप होते हैं, वे यदि अजीव के निमित्त के बिना ही होते हैं तो वह जीव का स्वभाव ही हो जाये, और कभी दूर न हो। और यदि निमित्त के कारण वह विकार होता हो तो जीव की वर्तमान अवस्था की योग्यता स्वतन्त्र न रहे और न जीव उस विकार को दूर कर सके। इसलिए यहाँ उपादान-निमित्त दोनों साथ ही बतलाते हैं।

जिस प्रकार कम-अधिक पानी के संयोगरूप निमित्त के बिना मात्र आटे में 'यह रोटी का आटा, यह पुड़ियों का आटा अथवा यह पपड़ी का आटा' - ऐसे भेद नहीं पड़ते, वहाँ आटे की वैसी योग्यता है और उसमें पानी का निमित्त भी है। उसी प्रकार चैतन्य भगवान आनन्दमूर्ति एकरूप है, उसमें परसंयोग (कर्म) के निमित्त बिना मात्र अपने से ही पुण्य-पापादि सात भेद नहीं होते। उन सात तत्त्वों की योग्यता तो जीव में अपने में ही है, किन्तु उसमें अजीव का निमित्त भी है। अजीव की अपेक्षा बिना अकेले जीव तत्त्व में सात प्रकार नहीं पड़ सकते। जीव ने अपनी योग्यता से पुण्यपरिणाम किये, वह जीव पुण्य है और उसमें जो कर्म निमित्त है, वह अजीव पुण्य है। दोनों में अपनी-अपनी स्वतन्त्र योग्यता है। अजीव में जो पुण्य हुए, वे जीव

के कारण हुए – ऐसा नहीं है और जीव में जो पुण्यभाव हुए, वे अजीव के कारण हुए – ऐसा भी नहीं है। वर्तमान एक समय में दोनों साथ हैं, उसमें जीव की योग्यता और अजीव निमित्त – ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

इन सर्वज्ञकथित नवतत्त्वों को समझे तो स्थूल विपरीत मान्यताएँ तो दूर हो जाती हैं। नव तत्त्वों को माननेवाला जीव ईश्वर को कर्ता नहीं मानता, वस्तु को सर्वथा कूटस्थ या सर्वथा क्षणिक नहीं मानता। नवतत्त्व को माने तो जीव का परिणमन भी माने, इसलिए जीव को कूटस्थ न मान सके और न अजीव को भी कूटस्थ मान सके। जगत में भिन्न-भिन्न अनेक जीव-अजीव द्रव्य माने, एक द्रव्य में अनेक गुण माने, उसका परिणमन माने और उसमें विकार माने, तभी नव तत्त्वों को मान सकता है। जो नव तत्त्वों को माने, वह ऐसा नहीं मान सकता कि जगत में एक कूटस्थ सर्व व्यापी ब्रह्म ही है। सम्यग्दर्शन प्रगट करने की तैयारीवाले जीव को प्रथम नव तत्त्व की श्रद्धारूप आंगन आता है।

यहाँ श्री आचार्यदेव ने सातों तत्त्वों में जीव की योग्यता की बात की है। जीव की वर्तमान योग्यता की योग्यता से ही पुण्य होता है। इसलिए 'इस समय ऐसा ही शुभभाव क्यों ?' – ऐसा प्रश्न नहीं रहता। पुण्य के असंख्य प्रकार हैं, उनमें भगवान के दर्शनों के समय अमुक प्रकार का शुभराग होता है, शास्त्र-श्रवण के समय अमुक प्रकार का शुभराग होता है और दया-दानादि में अमुक प्रकार का शुभराग होता है – ऐसा क्यों ? क्या निमित्त के कारण वैसे प्रकार पड़ते हैं ? तो कहते हैं कि नहीं, उस-उस समय की जीव की विकारी होने की योग्यता ही उस प्रकार की है। इतना स्वीकार करे, उसने तो अभी पर्यायदृष्टि से-व्यवहार से-अभूतार्थनय से जीव को तथा पुण्यादि तत्त्वों को स्वीकार किया जाता है। परमार्थ में तो यह नव तत्त्वों के विकल्प भी नहीं हैं।

मिथ्यात्व और हिंसादि भाव पापतत्त्व हैं। उसमें भी पापरूप होने योग्य और पाप करने वाला – यह दोनों जीव-अजीव हैं अर्थात् पापभाव हो, उसमें जीव की योग्यता है और अजीव निमित्त है। पुण्य और पाप दोनों

विकार हैं, इसलिए 'विकारी होने की योग्यता' में ही पुण्य और पाप दोनों को ले लिया है। वे निमित्त के बिना नहीं होते और निमित्त के कारण नहीं होते। जीव की योग्यता होती है और अजीव निमित्त है। 'योग्यता' कहने से उसमें यह सब न्याय आ जाते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव विकार को अपना स्वरूप नहीं मानते, तथापि उनके विकार होता है। वहाँ, चारित्रमोहनीयकर्म के उदय के कारण सम्यग्दृष्टि को विकार होता है - ऐसा नहीं है, किन्तु उस भूमिका में विद्यमान जीव के परिणाम में ही पुण्य या पाप होने की उससमय की योग्यता है। उसमें अजीव कर्म तो निमित्त है। मिथ्यात्व के पाप में मिथ्यात्वकर्म का उदय निमित्त है, किन्तु उस जीव को मिथ्यात्व का पाप हुआ, वहाँ उस जीव की पर्याय में ही वैसी योग्यता है - मिथ्यात्व कर्म के कारण मिथ्यात्व नहीं हुआ है, तथापि मिथ्यात्वादि भाव में अजीव कर्म निमित्त न हो - ऐसा भी नहीं होता। अकेले तत्त्व में पर की अपेक्षा बिना विकार नहीं होता। यदि अकेले तत्त्व में परलक्ष्य के बिना विकार हो, तब तो वह स्वभाव ही हो जायेगा।

यहाँ जीव को अपनी योग्यता में रागादि की वृद्धि होती है और घटते हैं, इसलिए पुण्य-पापादि की हीनाधिकता होती है तो उसके निमित्तरूप सामनेवाले अजीव में में भी हीनाधिकता मानना पड़ेगी। वह हीनाधिकता अनेक द्रव्य के बिना नहीं हो सकती, इसलिए पुद्गल में संयोग-वियोग, स्कन्ध आदि मानना पड़ेगा। जिस प्रकार यहाँ जीव के उपादान की योग्यता में अनेक प्रकार पड़ते हैं, उसी प्रकार सन्मुख निमित्तरूप अजीवकर्म में भी अनेक प्रकार पड़ते हैं। ऐसा होने पर भी कोई द्रव्य किसी द्रव्य का शत्रु तो है ही नहीं। अजीव कर्म शत्रु होकर जीव को बलात् विकार कराते हैं - ऐसा नहीं है, अजीव को विकार का कर्ता तो निमित्तरूप से कहा है।

यह गाथा अति उत्तम है, इसमें नव तत्त्वों को समझकर भूतार्थस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट करने की अद्भुत बात आचार्य भगवान ने की है। यह गाथा समझ कर अन्तर में मनन करने योग्य है। ❀

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यवर
श्री दशरथस्वामी

आचार्य दशरथस्वामी सिद्धान्त ग्रन्थों के ज्ञाता थे। आचार्य गुणभद्रजी ने आपको अपना गुरु माना है, परन्तु पंचस्तूप संघ की पट्टावलियों अनुसार आप धवला टीका रचयिता भगवान आचार्य वीरसेनस्वामी के शिष्य थे। आचार्य जिनसेन (द्वितीय) भी भगवान वीरसेनस्वामी के शिष्य थे। अत: आचार्य दशरथजी आचार्य वीरसेनजी के द्वितीय शिष्य रहे हों। भगवान गुणभद्राचार्य ने आपको गुरु माना होने से प्रतीत होता है, कि आप भगवान आचार्य गुणभद्रजी के विद्यागुरु रहे हों।

आपने कोई ग्रन्थ लिखा हो ऐसा नहीं मिलता; परन्तु आचार्य गुणभद्रजी के विद्यागुरु होने से व आचार्य वीरसेनस्वामी के शिष्य होने से आप सिद्धान्तों के व प्रथमानुयोग के ज्ञाता होंगे, यह अवश्य है।

इतिहासकार आपका काल ई. स. 820-870 निर्णित करते हैं।

आचार्य दशरथस्वामी को कोटि कोटि वन्दन।

भगवान आचार्यवर
श्री दशरथस्वामी

आचार्यदेव गुणभद्रस्वामी अनेक महान आचार्यों में से एक हैं, जो स्वयं भावलिंग मुनिधर्म सह यथातथ्य द्रव्यलिंगरूप आचार से अलंकृत थे और वैसा ही उन्होंने अपनी पैनी लेखनी से लिखा भी है, कि जैसे - (1) मणियों के मध्य में कान्तिमान मणि विरले ही पाये जाते हैं, वैसे ही आज के साधुओं में समीचीन संयम का परिपालन करनेवाले साधु विरले ही रह गये हैं। (2) उसी भाँति 'जैसे पलंग आदि ऊँचे स्थान पर स्थित अल्पवयस्क अज्ञानी बालक तो उसके ऊपर से गिर जाने की शंका से भयभीत होता है, किन्तु तीनों लोकों के शिखररूप तप के ऊपर स्थित वह विचारशील साधु अपने अध:पतन से, भयभीत नहीं होता है, यह बड़े आश्चर्य की बात है।

आपके माता-पिता-कुल आदि की जानकारी प्राप्त हो, ऐसी सामग्री अपने साहित्य में आपने नहीं रखी है, फिर भी आपके साहित्य से इतना निश्चित है, कि आप अपने समय के बहुश्रुत विद्वान आचार्य भगवन्त थे। आप श्री जिनसेनाचार्य (द्वितीय) और श्री आचार्य दशरथगुरु के शिष्य थे। हो सकता है, 'दशरथगुरु' आपके विद्यागुरु और श्री आचार्य दशरथगुरु के शिष्य थे। हो सकता है, 'दशरथगुरु' आपके विद्यागुरु हों। आपके दादागुरु धवला ग्रन्थ के रचयिता आचार्य गुरुवर्य वीरसेनस्वामी थे। आचार्य गुणभद्रजी के शिष्य लोकसेन आचार्य थे।

प्रतिभामूर्ति आप संस्कृत भाषा के श्रेष्ठ कवि भी थे। आप योग्य गुरु के योग्यतम शिष्य थे। आपकी रचनाओं में सरलता व सरसता के साथ प्रसादगुण भी समाहित है। आप उत्कृष्ट ज्ञानी व महातपस्वी तो थे, पर साथ ही में आप अखण्ड बाल-ब्रह्मचारी भी थे। आपका निवास स्थान दक्षिण के आरकट जिले का 'तिरुमरुड़कुण्डम्' नगर माना जाता है। आपके ग्रन्थों की प्रशस्तियों से ज्ञात होता है कि आप सेनसंघ के आचार्य थे।

भगवान आचार्य जिनसेन (द्वितीय) की भाँति आपकी अपनी साधनाभूमि कर्णाटक व महाराष्ट्र की भूमि ही रही है, क्योंकि इन्हीं स्थानों में आपने अपने ग्रन्थों की रचना की है।

इतना ही नहीं, आप अपने गुरु के ऐसे शिष्य थे, कि जिन्होंने अपने गुरु की भाँति, अपने गुरु के अधूरे कार्य को पूर्ण किया। आप अपने गुरु के अतिशय प्रिय भक्त थे। आपकी गुरुभक्ति का एक ही उदाहरण पर्याप्त है, वह यह कि आपने अपने गुरु के महापुराण अर्थात् आदिपुराण के 42 सर्ग के पश्चात् का कार्य अर्थात् कि 23 तीर्थंकर सहित 63 श्लाका पुरुष का जीवनचरित्ररूप उत्तरपुराण रचा है। वह बनाते समय लिखते हैं कि, 'इस रचना में मेरे वचन श्रोताओं को सुस्वादु (आनन्ददायक) प्रतीत हों, तो वह मेरे गुरुओं का ही प्रभाव समझना चाहिए, क्योंकि आम्र आदि फलों में जो सुस्वादुता देखी जाती है, वह उन फलों के उत्पादक उनके वृक्ष के कारण ही है। इतना ही नहीं, 'मेरे ये वचन जिस हृदय से निकलनेवाले हैं, उस हृदय में तो गुरुओं का वास निरन्तर है, अत: वे उनके संस्कार से संयुक्त-रस, भाव व अलंकारादि से विभूषित होंगे ही।' वे गुरु भक्त

इतने हैं, कि वे लिखते हैं, 'जगत में श्रेष्ठ गुरु सर्वत्र दुर्लभ है व इस पुराणरूप समुद्र को पार करने में मेरे आगे चल रहे हैं।'

आपकी रचनाओं से गुरुभक्तिसह उत्कृष्ट विद्वता व आपकी शालीनता का ही परिचय मिलता है, कि जिससे ज्ञात होता है कि ऐसे उत्कृष्ट महाकाव्य की रचना बनना आपकी असाधारण प्रतिभा व उत्कृष्ट विद्वता बिना असम्भव ही था।

आपने निम्न ग्रन्थों की रचना की है।

(1) आदिपुराण 43वें पर्व के चौथे पद्य से 47 सर्ग तक पूर्णतया, (2)उत्तरपुराण : भगवान जिनसेनाचार्य (द्वितीय) की महापुराण रचना का आदिभाग 'आदिपुराण' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, अत: यह उत्तरभाग 'उत्तर पुराण' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। (3) आत्मानुशासन, (4) जिनदत्त चरित काव्य।

आपका समय विद्वानों ने ई.स. 898 निर्णित किया है।

परम वैराग्यवन्त 'आत्मानुशासन' के रचयिता आचार्य गुणभद्रस्वामी को कोटि कोटि वन्दन।

पृष्ठ 7 का शेष....

जाना था; परन्तु अब वह चैतन्यसम्पत्ति मेरी निर्विकल्प समाधि में प्रगट हुई है, साक्षात् अनुभव में आ गयी है।

अहा, इस चैतन्यसम्पत्ति के सामने जगत की किसी भी सम्पत्ति का मूल्य नहीं है। जिसने अन्तर की अनुभूति द्वारा ऐसा चैतन्यसम्पत्तिवान आत्मा प्राप्त किया, वही सच्चा लक्ष्मीवान है; जो बाह्य के संयोगों से बड़ाई लेना चाहें, वे तो सब दरिद्र हैं। भगवान! तू दरिद्र नहीं, दीन नहीं, तू तो चैतन्यसम्पत्ति से भरपूर भगवान है। सुख की सम्पत्ति तो तुझमें ही भरी हुई है। ज्ञान को अन्तर्मुख करके अपने स्वरूप की समाधि द्वारा उसे जान... तेरा आनन्दमय आत्मवैभव तीन लोक में सर्वश्रेष्ठ है, वह तेरी समाधि का विषय है-इसलिए अपने अन्तर्मुख उपयोग में ही वह प्राप्त होता है; इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से उसकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिए अन्तर के उपयोग द्वारा सुख-सम्पत्ति से भरपूर अपने 'चैतन्यधाम' में आनन्द से निवास कर।●●

प्रेरक-प्रसंग

परहित सरस धर्म नहीं भाई

बापू मद्रास में एक गाँव के रास्ते जा रहे थे। गाँव के किनारे एक औरत मैले-कुचैले कपड़े पहने सिर पर घड़ा रखे मिली। गाँधीजी को लगा कि इस महिला को सफाई के विषय में बताया जाए। उन्होंने उससे कहा, 'माँ! इन कपड़ों को धो लिया करो और रोज नहाते समय बदल लिया करो।'

गाँधीजी की बात सुनकर महिला मौन रही। गाँधीजी को आश्चर्य हुआ। बोले—'क्यों, मेरी बात बुरी लगी ?'

वह बोली—'बात तो ठीक है। लेकिन मैं क्या पहनकर नहाऊँ और क्या पहनकर धोऊँ।'

'क्या तुम्हारे पास और कपड़े हैं ही नहीं ?'

महिला फिर मौन रही। गाँधीजी समझ गये कि उसके पास बदलने के लिए कपड़े हैं ही नहीं।

गाँधीजी ने उसी समय शपथ ली कि सारे देशवासियों को जब तक तन-भर कपड़ा नहीं मिलता, तब तक वे भी केवल कौपीन धारण करके रहेंगे। तब से आजीवन उन्होंने घुटनों तक की ही धोती पहनी, अन्य कोई वस्त्र नहीं पहना। चाहे कड़कड़ाती सर्दी ही क्यों न पड़ रही हो। विदेश जाने पर भी वे अपने उन्हीं वस्त्रों में रहते थे; जबकि वे यदि चाहते तो आराम की जिन्दगी बिता सकते थे।

शिक्षा- गाँधीजी के इसी दुर्लभ व्यक्तित्व ने उन्हें महान बनाया। करुणा-उदारता आदि गुण उनके जीवन में प्रकट दिखते थे; न कि केवल भाषणों में। श्रेष्ठ और उच्च आचरण से व्यक्ति महान बनता है।

साभार : बोध कथायें

मुनिदशा में कायरों का काम नहीं

जिस प्रकार अरहन्तदेव निर्मल विज्ञानघन में निमग्न है, उसी प्रकार हमारे गुरु-मुनि भी विज्ञानघन में निमग्न हैं। देव और गुरु दोनों विज्ञानघन में निमग्न हैं, इसलिए एक अपेक्षा से दोनों समान हैं। अहा! ऐसी होती है मुनिदशा! उसमें कायरों का काम नहीं है। **(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी)**

आज मृत्यु के समक्ष सोचता...

करने योग्य ही नहीं किया,
और अकरणीय में समय दिया;
आज मृत्यु के समक्ष सोचता,
जीवन में क्या शेष रहा ?

प्रदर्शन ही तो परम लक्ष्य था,
दिखावे में सब कुछ गँवा दिया;
अन्दर कुछ था, बाहर कुछ था,
ऋजुता को न ग्रहण किया।
आज मृत्यु के समक्ष सोचता,....
दीवारों सा रहा सदा ही,

ठूँठ बने सब खड़ा रहा;
श्रवण-पठन तो खूब किया पर,
परिणमित आज तक नहीं हुआ।
आज मृत्यु के समक्ष सोचता,....

अज्ञान का न ज्ञान था,
न ज्ञान को सम्यक् किया;
ज्ञान ज्ञान के नाम मात्र पर,
ज्ञेयों का विस्तार किया।
आज मृत्यु के समक्ष सोचता,....

वर के सुधार में काल गँवाया,
खुद के लिए न समय दिया;
जगह-जगह बस सुख को देखा,
निज हित पर न ध्यान दिया।
आज मृत्यु के समक्ष सोचता,....

धर्म कार्य के बड़े नाम पर,
अहंकार का ही पोषण किया;
धर्म ध्यान के बड़े काम पर,
व्यस्तता का साधन ढूँढ़ लिया।
आज मृत्यु के समक्ष सोचता,
जीवन में क्या शेष रहा ?

— मङ्गलार्थी प्रणव जैन, कक्षा XII

समाचार-दर्शन

मंगल वात्सल्य प्रभावना शिविर (एल्युमनी मीट) सम्पन्न

तीर्थधाम मंगलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन अपने लक्ष्य की ओर पूर्ववत् अग्रसर है। इस विद्यालय के सोलह वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। अत: तीर्थधाम मंगलायतन में 28 से 30 दिसम्बर तक त्रिदिवसीय एल्युमनी मीट का अयोजन किया गया। जहाँ सैकड़ों भूतपूर्व मंगलार्थी छात्र एक-दूसरे से मिलने और धर्मचर्चा करने यहाँ आए। देश-विदेश में व्यवसाय, नौकरी आदि करनेवाले सभी मंगलार्थियों को इस आयोजन का हिस्सा बनने हेतु आमन्त्रित किया गया था। शनिवार को सुबह आठ बजे धूमधाम से इस समारोह का शुभारम्भ हुआ।

सुबह आठ बजे शोभायात्रा के साथ धूमधाम से इस कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। आगन्तुक छात्रों ने धर्म ध्वजारोहण कर कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। साथ ही पूजन, रत्नत्रय विधान के माध्यम से जिनेन्द्र भगवान की आराधना की गई। उद्घाटन समारोह के अध्यक्ष अजीत जैन, बड़ोदा; मुख्य अतिथि आर के जैन, देहरादून; विशिष्ट अतिथि अनिल जैन, बुलन्दशहर; व अनिल जैन, हाथरस ने तीर्थधाम मंगलायतन के संरक्षक पवन जैन के साथ संयुक्तरूप से कार्यक्रम का उद्घाटन किया। समारोह के दौरान मंगलार्थी ज्ञायक जैन, अगम जैन, प्रणव जैन आदि ने अपने उद्गार व्यक्त किए। पण्डित अशोक लुहाड़िया ने मंगलायतन के विद्यानिकेतन बनने की यात्रा के बारे में सभी को बताया। इस उद्घाटन समारोह के बाद नवीनीकरणपूर्वक तैयार भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन व भोजनशाला का उद्घाटन भी सभी मंगलार्थियों व अतिथियों ने संयुक्तरूप से किया।

धार्मिक चर्चा: दोपहरकालीन पहले सत्र में गोष्ठी के माध्यम से 'तोरी सकल जग दंद फंद निज आतम ध्यायो' इस आधुनिक युग में धर्म ध्यान कैसे करें? विषय पर चर्चा हुई। इस गोष्ठी की अध्यक्षता बीना जैन, देहरादून ने की। यहाँ वक्ता के रूप में पुनीत जैन, अनुभव जैन, ज्ञाता सिंघई, भूपेन्द्र यादव, सन्देश जैन मौजूद रहे। संचालन शालीन जैन ने किया। दूसरे सत्र में प्रख्यात मोटीवेशनल स्पीकर शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल ने सभी बच्चों को धार्मिक विषयों पर सम्बोधित किया व उनसे बातचीत भी की।

सायंकालीन कार्यक्रम: शाम छह बजे श्रीमानस्तम्भ मन्दिर में गीत-संगीत के साथ जिनेन्द्र भक्ति कर भगवान के गुणगान किया गया। जहाँ बच्चों ने नृत्य एवं भजन आदि की मनमोहक प्रस्तुति दी। एक तरफ जहाँ मंगलार्थी अनुभव जैन, करेली व विराग जैन, कोटा ने स्वाध्याय के माध्यम से धर्मचर्चा की। वहीं ख्यातिप्राप्त विद्वान ब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी ने बच्चों को स्वाध्याय के माध्यम से धर्म लाभ कराया।

तीर्थधाम मंगलायतन के सभागार में सांस्कृतिक कार्यक्रम के रूप में अतीत के

झरोखे नामक प्रस्तुति दी गई। जहाँ बच्चों ने अपने छात्रावास काल के अनुभव सभी को सुनाये। इस दौरान बच्चों को उनके छात्रावास काल को याद दिलानेवाली एक रोमांचक व भावुक डॉक्यूमेंट्री फिल्म को भी दिखाया गया।

दूसरे दिन भी रहा धर्मचर्चा का माहौल

एल्युमनी मीट का दूसरा दिन जिनेन्द्र अर्चना, विधान, धर्मचर्चा, गोष्ठी और सांस्कृतिक कार्यक्रमों से सराबोर रहा। भगवान श्री बाहुबलीस्वामी के प्रक्षालन व पूजन-अर्चन के साथ एल्युमनाई मीट के दूसरे दिन का शुभारम्भ हुआ। जहाँ पूज्य गुरुदेवश्री के सीड़ी प्रवचन व बालब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी के स्वाध्याय से धर्म लाभ मिला। साथ ही दोपहर में जैन तात्विक विषय 'धन समाज गज बाज राज तो काज न आवे-तो फिर धन कितना, कैसे और किस कीमत पर?' पर गोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसकी अध्यक्षता पण्डित राकेश जैन, नागपुर ने की व संचालन सुमित जैन, करेली ने किया।

भजन संध्या : सायंकालीन कार्यक्रम में भजन सन्ध्या का भव्य आयोजन हुआ। जहाँ तीर्थधाम मंगलायतन के गीत के साथ जिनेन्द्र भजनों व गीतों की मनमोहक प्रस्तुति हुई। भजन सन्ध्या में मौजूद सभी शिविरार्थियों व मंगलार्थियों ने मानस्तम्भ मन्दिर की परिक्रमा कर मनमोहक नृत्य प्रस्तुत किया।

अलीगढ़ शहर के नगर आयुक्त श्री अजयदीप सिंह आईएएस ने भी शाम को मंगलायतन धाम का भ्रमण किया और मंगलार्थी छात्रों को सम्बोधित भी किया। उन्होंने कहा कि सकारात्मकता, नए विचार, रचनात्मकता और सही नेटवर्किंग ही हमें श्रेष्ठ और बड़ा बनाती है।

धर्मचर्चा: सायंकालीन स्वाध्याय की श्रंखला में नागपुर के संयम जैन ने ईश्वर परीक्षा विषय पर सभी को सम्बोधित किया। साथ ही दूसरे स्वाध्याय में भीलवाड़ा के शुद्धात्मप्रकाश जैन ने भी सभी को धर्म लाभ दिया।

एल्युमनाई मीट का भव्य समापन समारोह

जिनेन्द्र आराधना के साथ तीसरे दिन सभी ने पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन सुनकर दिन का आरम्भ किया। भूतपूर्व छात्रों ने पुरानी परम्परा को निभाते हुए, अपने ही हाथों से पूरे मन्दिर व जैनग्रन्थों की साफ-सफाई की। बालब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी ने अपने प्रवचन में कहा कि बाहर के आडम्बर से हटकर अपनी आत्मा का ध्यान कर लेना ही सच्चा सुख मिलने का उपाय है।

मंगलार्थी सौधर्म जैन ने बताया कि एसोसिएशन ऑफ तीर्थधाम मंगलायतन एल्युमनाई (आत्मा) के सदस्यों ने बालब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी को सम्मानित कर उनका आभार प्रगट किया। तत्पश्चात गोष्ठी आदि के माध्यम से धर्मचर्चा का लाभ भी मिला।

इस अवसर पर मंगलार्थी छात्रों ने अपने सभी गुरुओं - श्री पवन जैन; पण्डित अशोक

लुहाड़िया; डॉ. राकेश शास्त्री; पण्डित देवेन्द्र जैन; पण्डित सुधीर शास्त्री; श्रीमती बीना लुहाड़िया; डॉ. (श्रीमती) स्वर्णलता जैन, सुश्री कामना जैन आदि को याद किया।

सायंकालीन भजन सन्ध्या में भी सभी शिविरार्थी खूब झूमे और भक्ति का आनन्द लिया। मंगलार्थी स्वाध्याय की श्रंखला में मंगलार्थी ज्ञाता सिंघई व मंगलार्थी विराग जैन ने कालद्रव्य के विषय को बड़ी बारीकी से समझाया। साथ ही वर्तमान में अध्ययनरत मंगलार्थी प्रणव जैन को सर्वश्रेष्ठ मंगलार्थी के खिताब से लैपटॉप देकर सम्मानित किया गया। इस मौके पर मंगलार्थी अनुभव जैन, करेली; ऋषभ जैन, मुजफ्फरनगर; चैतन्य जैन, रतलाम; शुद्धात्म जैन, राजस्थान; चिराग जैन, कलकत्ता; केविन शाह, मुम्बई; अजय जैन, कानपुर; संकेत जैन, मंगलायतन आदि मौजूद रहे।

समापन समारोह की सन्ध्या में यहाँ देश-विदेश से पधारे सभी भूतपूर्व मंगलार्थी छात्रों को प्रशस्ति प्त्र, जैनग्रन्थ व अन्य ढ़ेरों उपहार देकर सम्मानित किया गया। सभी ने इन तीन दिनों में साधना और प्रभावना के इस पर्व को धूमधाम से मनाया। मंगलायतन के संरक्षक पवन जैन ने सभी आगन्तुकों का आभार व्यक्त किया और मंगलायतन के महामन्त्री स्वप्निल जैन ने भी समापन समारोह में अपने उद्‌गार व्यक्त किए। प्रत्येक तीन वर्ष में आयोजन किया जाएगा।

साक्षात्कार

- मंगलार्थी सुमित जैन, करेली, मध्यप्रदेश

मैं मध्यप्रदेश के एक छोटे गांव से सिर्फ अच्छी पढ़ाई के लिए तीर्थधाम मंगलायतन आया था। यहाँ आकर मेरे जीवन में बड़ा परिवर्तन आया। सासनी के केएल जैन इण्टर कॉलेज से बारहवीं की शिक्षा व मंगलायतन में धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर मंगलायतन विश्वविद्यालय से मैंने स्नातक किया। घर की विषम परिस्थितियों के बीच मैंने यह सब बड़ी सरलता से कर लिया। क्योंकि मेरे साथ मेरा मंगलायतन हर क्षण, हर पल रहा। आज मैं भोपाल में बतौर **ट्रेजरार ऑफिसर** कार्यरत हूँ और यह कहते हुए मुझे गर्व होता है कि मेरा पूरा गाँव अब मेरे नाम से जाना जाता है।

- मंगलार्थी अगम जैन, आईपीएस

मैंने सिर्फ धार्मिक शिक्षा के उद्‌देश्य से इस संस्थान में प्रवेश लिया। दसवीं की पढ़ाई के बाद मेरे मन में एक विचार आया कि ऐसा कौन सा साधन हो, जिससे धर्म का प्रचार-प्रसार बड़े पैमाने पर हो सके। और इसके बाद मैंने सिविल सर्विस में जाने का फैसला लिया। आज मैं जावरा शहर (म.प्र.) में आईपीएस हूँ और वहाँ की जेल के कैदियों के साथ भी धर्मचर्चा करता हूँ और शहरवासियों के साथ भी। कई ऐसे कैदी हैं, जिनका जीवन सच में बदला है और उन्होंने इस बात को स्वीकारा भी।

- मंगलार्थी शालीन जैन, वैज्ञानिक, भाभा एटोमिक रिसर्च सेंटर

शहडोल जैसे छोटे से शहर से एक वैज्ञानिक बनने का सफर काफी रोमांचक रहा है

और इस सफर को रोमांचक बनाया तीर्थधाम मंगलायतन ने। मंगलायतन हमें न सिर्फ शिक्षा और धर्म के बीज हमारे अन्दर बोता है, बल्कि हमारा सर्वांगीण विकास करता है। डीपीएस की शिक्षा भी मेरे बहुत काम आई है। मैं सदैव तीर्थधाम मंगलायतन का हृदय से धन्यवाद देता हूँ कि जिसने मुझे इस काबिल बनाया।

पण्डित कैलाशचन्द्रजी का स्मृति दिवस

तीर्थधाम मंगलायतन : तीर्थधाम मंगलायतन के स्वप्नदृष्टा पण्डित कैलाशचन्द्रजी के स्मृति दिवस 19 दिसम्बर 2019 के अवसर पर विशेष पूजा-अर्चना, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन, सायंकालीन सभा में गोष्ठी एवं पण्डितजी की वीडियो मंगलार्थियों को दिखाकर मनाया गया। गोष्ठी में श्रीमती बीना जैन, देहरादून; पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री ने मंगलार्थी छात्रों को उनके संस्मरण तथा उनसे प्राप्त तत्त्वज्ञान के बारे में बताया। मंगलार्थी छात्र प्रणव जैन, सूर्यांश ठगन एवं सिद्धार्थ जैन आदि ने भी उनके जीवन से सम्बन्धित संस्मरणों को सुनाया।

गुरुवाणी मंथन शिविर और प्रथम वार्षिकोत्सव सम्पन्न

गौरझामर : श्री शान्तिनाथ जिनालय का प्रथम वार्षिकोत्सव गुरुवाणी मंथन शिविर और रत्नत्रय विधान के आयोजनपूर्वक सम्पन्न हुआ। प्रतिदिन प्रातः जिनेन्द्र प्रक्षाल पूजन, रत्नत्रय विधान के साथ प्रतिदिन तीनों समय गुरुदेवश्री के सीडी प्रवचन (छहढाला एवं पुरुषार्थसिद्धि उपाय) के साथ स्वाध्याय हुआ। शिविर का उद्घाटन श्री सुनील सर्राफ सागर द्वारा किया गया। इस अवसर पर पण्डित राजेन्द्रकुमार जैन जबलपुर, पण्डित गुलाबचन्द जैन बीना के व्याख्यानों का लाभ प्राप्त हुआ। कार्यक्रम में रत्नत्रय निलय का शिलान्यास श्री महेन्द्र गंगवाल, जयपुर; श्री सुखदयाल डेवड़िया, श्री अनिल जैन परिवार, केसली; श्री अजय जैन परिवार, गौरझामर; श्री प्रकाशचन्द जैन के द्वारा बालब्रह्मचारी पण्डित अभिनन्दनकुमार शास्त्री के निर्देशन में ब्रह्मचारी मनोज जैन, जबलपुर के सहयोग से विधि-विधानपूर्वक सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम में डॉ. सचिन्द्र शास्त्री द्वारा किये गये शोध कार्य की पुस्तक 'जिनागमीय ज्ञान-ज्ञेय मीमांसा' का विमोचन किया गया। कार्यक्रम में आसपास के कई नगरों के साधर्मियों ने पधारकर लाभ लिया। सम्पूर्ण कार्यक्रम श्री विराग शास्त्री एवं श्री सचिन्द्र शास्त्री मंगलायतन के निर्देशन में सम्पन्न हुए। यह जानकारी श्री संजय जैन, गौरझामर द्वारा दी गयी।

वैराग्यसमाचार

जबलपुर : श्री मुन्नालालजी का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप श्री पवन जैन, अलीगढ़ की पुत्रवधू के दादाजी थे।

जबलपुर : श्री राजकुमार जैन का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप डॉ. मनोज जैन के पिताश्री थे।

सागर : सुश्री प्रियंका जैन (नानू) बंगेला का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप मनोजकुमार बंगेला की सुपुत्री थीं।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन आपका हार्दिक स्वागत करता है

आपका सहयोग अपेक्षित है

1.	**भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन**	
	एक वर्ष के लिए (एक विद्यार्थी)	25,000/-
	सम्पूर्ण अध्ययन काल के लिए (एक विद्यार्थी)	1,00,000/-
2.	**अतिथि भोजनशाला**	
	एक माह का भोजन	2,00,000/-
	एक दिन का भोजन (जलपान सहित)	15,000/-
	एक समय का भोजन	6,100/-
	एक समय का जलपान	3,100/-
3.	**तीर्थधाम मङ्गलायतन : ध्रुवपूजन तिथि**	
	सभी जिनमन्दिर	5,100/-
	प्रत्येक जिनमन्दिर हेतु ध्रुवपूजन तिथि	1,100/-
4.	**'मङ्गलायतन' मासिक पत्रिका**	
	अपनी ओर से एक अंक के प्रकाशन हेतु	21,000/-
	आजीवन सदस्यता	500/-
5.	**'मङ्गल वात्सल्य निधि'**	
	आजीवन सदस्यता (प्रति माह)	1,000/-

आप अपनी सहयोग राशि सीधे बैंक में भी जमा करवा सकते हैं।

नाम - **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़**

बैंक - **पंजाब नेशनल बैंक** ब्रांच - **रेलवे रोड, अलीगढ़**

A/c No. - 1825000100065332 IFSC - PUNB0001000

PAN - AABTA0995P

नोट - भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है।

श्रीमान सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आशा है आराधना-प्रभावनापूर्वक आप सकुशल होंगे।

वीतरागी जिनशासन के गौरवमयी परम्परा के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित आपका अपना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** सत्रह वर्षों से, सुचारुरूप से, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिमान है।

वर्तमान काल की स्थिति को देखते हुए, अब **मङ्गलायतन** का जीर्णोद्धार एवं अनेक प्रभावना के कार्य, जैसे-भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, भोजनशाला, **मङ्गलायतन** पत्रिका प्रकाशन आदि कार्यों को सुचारू रूप से भी व्यवस्था एवं गति प्रदान करना है। यह कार्य आपके सहयोग के बिना, सम्भव नहीं हैं। इसके लिए हमने एक योजना बनायी है, जिसमें आपको एक छोटी राशि प्रतिमाह दानस्वरूप प्रदान करनी होगी। इस योजना का नाम - **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** रखा गया है। हम आपको इस महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल करना चाहते है। **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आपको प्रतिमाह, मात्र एक हजार रुपये दानस्वरूप देने हैं।

मङ्गलायतन का प्रतिमाह का खर्च, लगभग दस लाख रुपये है। इस योजना के माध्यम से आप हमें प्रतिमाह 1,000 (प्रतिवर्ष 1000X12=12,000) रुपये दानस्वरूप देंगे। भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है। आप इस महान कार्य में सहभागिता देकर, स्व-पर का उपकार करें।

आप इसमें स्वयं एवं अपने परिवारीजन, इष्टमित्र आदि को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। साथ ही **तीर्थधाम मङ्गलायतन** द्वारा संचालित होनेवाले कार्यक्रमों में, आपकी सहभागिता, हमें प्राप्त होगी।

आप यथाशीघ्र पधारकर यहाँ विराजित जिनबिम्बों के दर्शन एवं यहाँ वीतरागमयी वातावरण का लाभ लेवें - ऐसी हमारी भावना है।

हार्दिक धन्यवाद एवं जयजिनेन्द्र सहित

अजितप्रसाद जैन	**स्वप्निल जैन**	**सुधीर शास्त्री**
अध्यक्ष	महामन्त्री	निदेशक

सम्पर्क-सूत्र : 9756633800 (सुधीर शास्त्री)
email - info@mangalayatan.com

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की आजीवन सदस्यता स्वीकार करता हूँ, मैं प्रतिमाह एक हजार रुपये **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आजीवन जमा करवाता रहूँगा।

हस्ताक्षर

यह राशि आप प्रतिमाह दिनांक पहली से दस तक निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	: SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	: HDFC BANK
BRANCH	: RAMGHAT ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	: 50100263980712
RTGS/NEFTS IFS CODE	: HDFC0000380
PAN NO.	: AABTA0995P

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

नवीन प्रकाशन - मोक्षमार्गप्रकाशक

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रथम बार **आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुनः मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।** जो मुमुक्षु संस्था, समाज स्वाध्याय हेतु मंगाना चाहते हैं। वे डाकखर्च देकर, नि:शुल्क मंगा सकते हैं।

छहढाला (हिन्दी) नवीन संस्करण **सशुल्क**

ग्रन्थ मँगाने का पता— प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन,
अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

मंगल वात्सल्य प्रभावना शिविर की झलकियाँ

पण्डित कैलाशचन्द्रजी के स्मृति दिवस पर उपस्थित मङ्गलार्थी

प्रकाशन तिथि - 14 जनवरी 2020 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 जनवरी 2020
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

स्वर्णिम अवसर—भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में प्रवेश हेतु

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के आगामी सत्र में अंग्रेजी माध्यम से कक्षा सातवीं पास कर चुके छात्रों के लिए सुनहरा अवसर है जो भी छात्र यहाँ के सुरम्य वातावरण में उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का भी लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, वे हमारे कार्यालय अथवा वेबसाइट से प्रवेश आवेदन-पत्र मंगाकर अपेक्षित जानकारियों एवं प्रपत्रों के साथ भरकर भेज देवें।

विदित हो कि कम से कम 60 प्रतिशत या उससे अधिक अंक प्राप्त विद्यार्थी ही आवेदन योग्य हैं, स्थान सीमित हैं। अत: शीघ्र ही पूर्ण जानकारी प्राप्त कर आवेदन-पत्र भेजने का अनुरोध है।

कोरियर द्वारा - **तीर्थधाम मङ्गलायतन,** (प्रवेश फार्म, भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन)
C/o विमलांचल, हरिनगर, गोपालपुरी, अलीगढ़ (उ.प्र.) 202001
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com